GLOBUS Journal of Progressive Education
Volume 3 / No 1 / Jan-Jun 2013 ISSN: 2231-1335

संत कबीर का चिन्तन

डॉ0 सुभाष शर्मा*

प्रस्तावना

लोक साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। हमारे देश में हजारों वर्ष से यह साहित्य चला आ रहा है। वास्तव में यदि जाये तो लोक साहित्य प्राचीनतम संस्कृति की एक मात्र धरोहर है। किन्तु लोक साहित्य आजकल एक पारिभाषिक शब्द हो गया हैं यह स्पष्टतः दो शब्दों से बना है। लोक और साहित्य। लोक साहित्य से आजकल जो अर्थ निकाला जा रहा है। वह एक नया किन्तु संकीर्ण चिंतन कहा जा सकता है। इस प्रकार का लोक साहित्य का नया चिंतन विदेशों में बहुत हुआ है। कई विदेशी विद्वानों ने लोक साहित्य का पर्याप्त कार्य किया है। अतः यहाँ विदेशी विद्वानों एवं हमारी इस सम्बन्धी मान्यताओं का विवेचन करना उचित होगा।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिअेनिका के अनुसार डॉ0 बर्कन ने फाक की व्यवस्था इस प्रकार की है, एक आदिम जाति में वे सभी व्यक्ति फोक होते हैं जिनमें वे समुदाय बना है और व्यापक अर्थ में यह शब्द राष्ट्र की समस्त जनसंख्या के लिए व्यवहृत हो सकता है। फिर भी पाश्च्यात प्रकार की सभ्यता की दृष्टि में इस शब्द का साधारण प्रयोगों (फोकलोर और फोकम्यूजिक आदि जैसे समस्त पदों में) संकुचित अर्थ में केवल उन्हीं के लिए आता है जो नागरिक संस्कृति की धाराओं तथा विधिवत शिक्षा के बाहर पड़ते है, जो निरक्षर हैं? अल्प साक्षर है तथा ग्राम और जनपदों में निवास करते है।

ग्रिम बन्धुओं से इस विज्ञान का श्रीगणेश किया। अगस्त 1846 की अथेनीडम पत्रिका में अमब्रासे मार्टन के छदम नाम से विलियम जान टाम्स ने फोकलोर शीर्षक से एक लेख लिखा। कुछ परिवर्तन के साथ यूरोप की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। भारतीय भाषाओं में लोक साहित्य, लोक संस्कृति, लोक गीत, लोक कला आदि के पीछे टाम्स साहब की ही देन हैं। सम्भवतः यह कहना कठिन ही होगा। इसके बाद यह विषय विश्व व्यापी महत्व का बन गया। यूरोप, एशिया, अमेरिका आदि में फोकलोर सोसायटी और कांग्रेस भी होती हैं। कलकत्ता और बम्बई में भी एक सोसायटी बनी थी। इस विषय में संसार में काफी काम हो रहा है। आज फोकलाजिस्टीज एक विज्ञान बन गया है।'' बाद यह विषय विश्व व्यापी महत्व का बन गया। यूरोप, एशिया, अमेरिका आदि में फोकलोर सोसायटी और कांग्रेस भी होती हैं। कलकत्ता और बम्बई में भी एक सोसायटी बनी थी। इस विषय में संसार में काफी काम हो रहा है। आज फोकलाजिस्टीज एक विज्ञान बन गया है।''

सन् 1946 में श्री डब्ल्यू. जे. थामस ने सर्वप्रथम फोकलोर शब्द का प्रयोग विकसित राष्ट्रों में बसी हुई विभिन्न असम्भय, आदिम तथा जंगली जातियों के परम्परा जन्य रीतिरिवाजों तथा अन्धविश्वासों के लिए किया था। इसी परिपाटी पर चलकर अन्य पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी लोकगीतों का असभ्य तथा आदिम स्थिति के लोगों को संगीत कह कर पुकारा है।''

आर. आर. मेरिट के अनुसारः—

"Folklore may be said to include the culture of the people, hicjw jas not been orkedw in the official religion nda history, but which is and has lways been of self groth."[4]

-R.R Marett.

लेविस स्पेन्स लिखते हैंः—

"Folklore means the study of urvivals of early customs, beliefs, narrative and art."[5]

-Lewis Spence.

विदेशों में विद्वानों ने लोक साहित्य पर पर्याप्त कार्य किया है। वहां लोक साहित्य के अध्ययन को फोकलोर नाम दिया गया है। वहां यह अध्ययन विज्ञान की शाखा का रूप ले चुका है। जिसे फोकलोरिस्टिक्स नाम दिया गया है।

हिन्दी में लोक संस्कृति शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के फोकलोर के अर्थ में होने लगा। पाश्च्यात विद्वान फोक उस जनसमुदाय को कहते हैं जो अशिक्षित और परम्परा से सभ्य मानव समुदाय के सम्पर्क से दूर रहता आया है। लोर का तात्पर्य ऐसे जनसमुदाय की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, विश्वास मुलक और मनोरंजन संबंधी गतिविधियां होती हैं।''

लोक साहित्य को समझने के लिए लोक और फोक शब्दों के अभिप्राय को हमें ठीक ठीक समझना होगा। लोक का अर्थ होता है सामान्य जन। इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक लोग शब्द साहित्य का विश्लेषण हैं।

डॉ. सत्येन्द्र का मत है कि लोक मनुष्य समाज की ही वह अंग है जिसमें अभिजात्य संस्कार नहीं होते और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''

लोक के बारे में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिबेनिका में बताया गया है कि आदिम समाज में तो उसके समस्त ही लोक ''फोक'' होते हैं और विस्तृत अर्थ में तो शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है।''

* *08/351, सेक्टर 03, राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद*

लोक के सम्बन्ध में ओम प्रकाश गर्ग ने विचार व्यक्त किया है कि आदिकाल से ही इस वसुन्धरा पर अपनी स्थितियों में विवरण करते हुए अथाह मानव समाज को ही लोक नाम से विभूषित किया गया है। लोक से अभिप्रेत कोई एक मानव विशेष नहीं हो सकता अपितु समस्त समाज को ही लोक नाम से पुकारा जाता है। यही लोक युग युग से अपनी अनुभूतियों, सुख–दुख, हास्य–रूदन, कटु–मधुर, अनुभवों को कथा, काव्य, चित्रों एवं शारीरिक हाव भावों के माध्यम से अभिव्यक्त करता रहा हैं तथा इन्हें अपनी सामाजिक सांस्कृतिक धरोहर के रूप

में पीढ़ी दर पीढ़ी संजोए हुए हैं। लोक की यही अभिव्यक्तियां लोक साहित्य कहलाती है। गेय एवं वाच्य अभिव्यक्तियां जिनमें लोक कथा, लोक वार्ता, लोंक गीत आदि हैं। लोक साहित्य व चित्रित तथा आंगिक अभिव्यक्तियों जिनमें अल्पना, मांडणा, नृत्य आदि सम्मिलित हुए लोक कला बन गई। लोक की मौखिक अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

डॉ. महादेव साहा लिखते हैं, लोक जीवन में पौराणिक देवी–देवताओं के अतिरिक्त हृदय की अनन्य भक्ति और विश्वास के फलस्वरूप अनेक लोक देवताओं, देवियों और पितरों की मान्यता है। इसके अतिरिक्त जनमानस की अनन्य भक्ति भावना के कारण, कोई भी व्यक्ति अपने विशिष्ट कृत्य आलौकि चमत्कारों के कारण पूजा एवं सम्मान का पात्र बन जाता हैं। इस प्रकार के सिद्ध रूप देवताओं में रामदेव बाबा, तेजाजी, भैरूजी, पाबुजी, गोगाजी जांभाजी, भभुतासिद्ध भोमियाजी करणीमाता और शीतला माता को पूजते हैं।''[10]इस पूजा की भावना के पीछे हम एक प्रचलित लोक आस्था को पाते हैं इन सब की पूजा समाज में उनके विशिष्ट कृत्य अथवा आलौकिक चमत्कारों के कारण प्रचलित हो गई जो आज तक चली आ रही है।

लोक और लोकतत्व की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए डॉ. सत्येन्द्र का विचार है कि यह लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार ये शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं। ऐसे लोक तत्वों से युक्त साहित्य को लोक साहित्य की संज्ञा दी जायेगी।''

अभी तक लोक पर प्रकाश डाला गया था। यहां अब साहित्य को भी इस संदर्भ में परख लेना उचित होगा, क्योंकि लोकसाहित्य दो शब्दों से बना है, लोक और साहित्य। ऐसे साहित्य के बारे में मुख्य धारणा तो यह है कि लोकसाहित्य अनुश्रुत रहता है और समय पाकर लिपिबद्ध भी हो जाता है। लोक साहित्य की परम्परा अतिप्राचीन होने के कारण और मानव चेतना परिवर्तनशीन होने के कारण, लोक साहित्य के रूप भी बदलते रहते हैं। इसी साहित्य के माध्यम से लोक मानस के अवशेष आज तक चले आ रहे हैं।

इस साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं कि साहित्य के इस विस्तृत अर्थ में आज मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति सम्मिलित मानी जायेगी जो लिखित हो या मौखिक हो, किन्तु व्यवसाय क्षेत्र की न हो। ऐसी समस्त लोकतत्व युक्त अभिव्यक्ति लोक साहित्य के अन्तर्गत होगी। लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है। जिसमेंः–

1. परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति भी माना जाता हो और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समायी हुई हो।
2. कृतित्व हो किन्तु वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो कि उसको व्यक्तित्व के साथ सम्बन्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।''

लोकतत्व यद्यपि सम्पूर्ण विश्व में ऐसा ही होना चाहिए। तथापि देश और काल विशेष में उसकी स्थिति भिन्न हो गयी हैं। लोकतत्व एक व्यापक विचार है, जिसका सम्बन्ध लोक के साथ प्रत्यक्ष होता है जो लोकों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, लोक जीवन में प्रविष्ट होकर स्वयं उसे अपने मानस चक्षु से देखता है वही व्यक्ति उसे पूरी तरह से समझता बूझता है। केवल पुस्तकस्थ विद्या से लोकतत्व का तल स्पर्शी परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता। साहित्य और लोकतत्व ये एक ही जीवन रथ के दो चक्र हैं।''

वास्तव में देखा जाये तो लोक और साहित्य का मेल बहुत प्राचीन हैं। भारतीय साहित्य और संस्कृति के विषम में तो यह तथ्य अक्षरशः सत्य है। लोके वेदेतत्व यही भारतीय जीवन का प्रतिष्ठा सूत्र है। संस्कृति, धर्म, दर्शन, आध्यात्म, कला, साहित्य, समाज आचार, इस सप्तक का जहां कहीं से उद्घाटन करने लगे तो भारतीय आकाश के नीचे युग–युगों तक वेद और लोक इन दोनों की समन्वित और संयुक्त सरणि हमें उपलब्ध होती है।''

हमारे देश में वर्ष भर में अनेक ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं जहां लोकसंस्कृति, लोकजीवन साकार उपस्थित हो जाता है। डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार आज ही लोक के जीवन का वार्षिक सत्र अनेक मंगलात्मक विधानों और आचारों से सम्पन्न है। लोक में भरे हुए पर्व और उत्सव, लोक नृत्य लोक गीत, लोक कथायें व्रतों की अवदान कहानियां संवत्सर का रूप संवारने वाले अनेक ब्रत और उपवास, देव यात्राओं और मेले आदि से भारतीय संस्कृति अपना अमिट स्पन्दन प्राप्त कर ही है। लोक की भाषा आकाश गंगा के समान आज भी अपनी पावनी शक्ति से भूतल के प्राणियों को उज्जवल बना रही है। उसी शक्ति के साहित्य और जीवन की कल्याण परम्पराओं अस्तित्व में आ रही हैं।''

समारोहों, जनसमूहों, मेलों, आयोजनो, में भाटों, भांड, कथक्कड़ो द्वारा पर्वो, त्यौहारों एवं विवाहों आदि उत्सवों पर एकत्रिततों द्वारा लोक साहित्य का आदान–प्रदान होता है।

लोकतात्विक अध्ययन से भारतीय संस्कृति की पहिचान की जा सकती है। सृष्टि की सावित्री अग्नि, वेद की सावित्री विद्या, पुराण की सावित्री कथा, आचार कर वट सावित्री व्रत ये एक ही स्वास्तिक की चार दिशायें हैं। इन दिगन्त बिन्दुओं के क्षेत्र में भारतीय संस्कृति विकसित होती है। इन्हें पहिचानना ही साहित्य का सच्चा लोकतात्विक अध्ययन है। यह विषय, बुद्धि का कुतूहल नहीं, यह तो संस्कृति के निर्माणात्मक एवं विधायक, तत्वों का छानबीन हैं जिनका जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध हैं।''

संसार भर के देशों में और विशेष रूप से भारत में जीवन के उपलक्ष में मंगलमय उत्सवों में, त्यौहारों के अवसरों पर लोकवृत्ति जागरूक स्थिति में मिलेगी। ऐसे समयों पर जनसमुदाय आज भी लोक में चले आ रहे आचरणों को पूर्ण करने को उत्कंठित रहते हैं। जो लोक में व्याप्त है साहित्य में नहीं। इस तरह आज भी

लोकतत्व अविशष्ट है और लोकतत्व जहां प्रधानता से विद्यमान हैं वहां लोकसाहित्य को भी विद्यमान मानना होगा। लोकसाहित्य के माध्यम से लोकमानस के अवशेष आज तक चले आ रहे हैं।

इसके विपरीत पाश्चात्य देशों की धारणा है कि संस्कृति के पटल पर लोक शब्द को अभिव्यक्त करने के माध्यम असंस्कृत लोग हैं। यूरोप के देशों में सभ्य लोगों की संख्या कम है और असभ्य लोगों के अपरिमार्जित विश्वासों, उनकी प्रथाओं और सामाजिक प्रथाओं का अध्ययन इसका क्षेत्र हैं।

इस प्रकार एक विचारधारा जहां लोकसाहित्य को विस्तृत क्षेत्र में देखती हैं वहीं दूसरी विचारधारा योरोपीय विचारधारा के अन्तर्गत संकीर्ण क्षेत्र को ग्रहण करती है। अर्थात् वहां मात्र असभ्य लोगों के बारे में अध्ययन करना ही लोक साहित्य की सीमाओं में आता है। यह स्थिति लोक की आदिम चेतना से सम्बद्ध है जहां सम्भवतः विकास उनका स्पर्श तक नहीं कर सका है।

लोकसाहित्य को उपरोक्तानुसार भलीभाँति जानने के उपरान्त आवश्यक है कि लाकतत्वों को जाना जाये। लोकतत्वों के सम्बन्ध में डॉ. सत्येन्द्र लिखते हैं कि शुद्ध लोक मानस से इस भुमि का नृतात्विक क्षेत्र से घनिष्ट सम्बन्ध देखा जा सकता है। माइथालाजी, ऐनीमिज्म, पेटिश, टेबु, टोटेमिज्म, मैजिक आदि इस भूमि के साधारण तत्व है।''

लोकतत्वों के अन्तर्गत पुनर्जन्म, मृतकर्म, भुतप्रेत, शकुन, अपशकुन, जादू, टोना, तंत्र–मंत्र, आलौकिक और आध्यात्मिक शक्ति के प्रति विश्वास तथा देवी–देवताओं, पेड़–पौधे, देवताओं का पूजन, रीति–रिवाज आदि की अभिव्यक्ति आती है।

लोक संस्कृति की आत्मा ग्रामीण रीतिरिवाजों, परम्पराओं, लोकगीतों एवं आचार विचार में निहित है, लोक में जो विश्वास, वार्तायें, गाथायें, सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं प्रचलित हैं उनसे संस्कृति का निर्माण हुआ हैं।''[18]इन धारणाओं को ही लोक तत्व कहा जा सकता है।

डॉ. एल.बी. रामअनन्त लोक तत्वों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि भारतीय ग्रामों में निवास करने वाली जनता की समस्त धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को भी लोक संस्कृति के अन्तर्गत समझा जाता है।''[19]जिनमें लोकतत्व समाहित होते हैं।

लोकसाहित्य जहां ग्राम्य आस्थाओं का प्रकटीकरण करता है, तो वह एक और शिष्ट साहित्य एवं दूसरी जंगबली अभिव्यक्तियों की सीमाओं को भी छूता है। डॉ.सत्येन्द्र का मत है कि लोक साहित्य की ऊपरी सीमा शिष्ट साहित्य को स्पर्श करती है और निचली सीमा घोर जंगली अभिव्यक्ति को।''

वास्तविकता यह है कि मनुष्य की आज की सभ्यता आदिम बर्बर अवस्था से विकसित होकर उपार्जित की गई है। फिर भी मनुष्य की अभिव्यक्तियों में आदिम अभिव्यक्ति के अवशेष रह ही जाते हैं, वे अवशेष की लोकवार्ता हैं। डॉ. सत्येन्द्र इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि लोकवार्ता के अन्तर्गत वह समस्त अभिव्यक्ति जाती हैं जिसमें आदिम मानव के अवशेष आज भी दिखाई पड़ते हैं।''

यहां यह स्पष्ट करना उचित होगा कि लोकतत्वान्तर्गत आदिम अभिव्यक्ति ही नहीं आती। अपितु हमारे घरों और चारों ओर व्याप्त राम, कृष्ण, विक्रमादित्य, गोरखनाथ आदि की लोकवार्तायें वैदिक काल से लेकर सात–आठ सौ वर्ष पुरानी आज भी समाज में प्रचलित हैं। यह लोक प्रवृत्ति लोकतत्व के अन्तर्गत आती है। लोकसाहित्य एक अंश है लोकवार्ता का। लोकवार्ताओं में भी लोकमानस की व्याप्ति रहती है।''

हमारे समाज में बहुत समय में ही लोकगीत चले आ रहे हैं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि लोकगीत वस्तुतः किसी समाज विशेष के हृदय और मस्तिष्क की अभिव्यक्ति करता है। उसमें काव्य निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहा करता है। लोकगीत का माध्यम बहुधा अनुश्रुति और मौखिक परम्परा द्वारा उपलब्ध होता है। उसमें अधिकतर प्रेमपरक या रसात्मक स्थलों का ही समावेश रहा करता है।''

लोकसाहित्य पर उपरोक्तानुसार प्रकाश डालने के पश्चात् यहां यह उचित होगा कि इस बात पर विचार किया जाये कि विद्वानों ने इसे कैसे परिभाषित किया है। इस साहित्य के लक्षण और उसका क्षेत्र क्या हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकसाहित्य को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–

''लोकसाहित्य पोथी ज्ञान से पृथक लोकचित्र का साहित्य है।''

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार इस कविता में काव्य सोष्ठक प्रदर्शित करने के लिए किसी रस या अलंकारादि सम्बन्धी शास्त्र की आवश्यकता नहीं थी। उसकी श्रृंखला कभी नहीं टूटती और वह अधिकतर अपने मौखिक रूप में जीवित रही। इसका एक बहुत बड़ा अंश अभी तक मौखिक रूप से विद्यमान है।''

डॉ. सत्येन्द्र के मतानुसार, जी वेद में स्पष्ट नहीं है, यदि वह लोक में हो तो वह लोकसाहित्य है।''

लोकसाहित्य का आशय आदि मानस की लिखित अथवा परम्परागत मौखिक क्रम से चली आती बोली या भाषागत उन सारी अभिव्यक्तियों से है, जिनका सम्बन्ध लोक मानस से है और जो कृति के रूप में लोकतत्वों से समन्वित हैं।''

मेर मतानुसार शास्त्रेतर ज्ञान को लोकसाहित्य के नाम से अभिव्यक्त किया जा सकता है। लोकसाहित्य सरल अभिव्यक्त है, जो मौखिक एवं परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चला आता है। जिसमें विशेष प्रकार की स्फूर्ती होती है और जो मानव जीवन का चित्रण करता है।

लोकसाहित्य के लक्षण निम्न प्रकार माने जा सकते हैं–

1. जातीय संस्कृति और परम्परायें, रूढ़ियां।
2. जीवन के सरल संस्कार, लोक विश्वास आदि।
3. रचियता का आत्म गोपन।
4. अज्ञात रचना तिथि और एक लम्बी परम्परा।
5. जनपदीय भाषा में स्वाभाविक कलात्मक अभिव्यक्ति की रूमानियत।
6. आदित मानव का स्वतः प्रकटीकरण जो लोकमानस से सम्बद्ध होता है।''

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उसके अध्ययन को किसी सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। लोकसाहित्य के अध्ययन के अन्तर्गत लोक संस्कृति के सभी तत्व, लोक विज्ञान और लोककला आती हैं। डॉ. सत्येन्द्र का विचार है कि हिन्दी के उदय की बेला पर दृष्टिगत करते ही यह सहज ही प्रतिभाषित

होता है कि उसकी समस्त पृष्ठभूमि लोकवार्ता और लोकतत्वों पर निर्मित हुई होगी। हिन्दी लोकभाषा थी और इसमें साहित्य सृजन करने वाले आरम्भ में वे ही लोग थे जिनका या तो संस्कृत से सैद्धान्तिक विरोध था जैसे बौद्ध जैन। या इसमें वे लोग थे जिनका संस्कृत से सम्पर्क ही न था या अत्यन्त सामधारण जो कुछ पढ़, कुपढ़ या बेपढ़ थे। अतः लोकभाषा का ही आधार इनके साथ।''

इस कथन से स्पष्ट होता है कि हिन्दी का प्रारम्भ लोकवार्ता और लोकतत्वों को लेकर हुआ, क्योंकि हिन्दी विशिष्ट वर्ग की होकर प्रारम्भ में लोकभाषा ही थी। ऐसी स्थिति में स्वभावतः वह लोक से ही लेकर गतिवान बनी रही। इस गति की श्रृखला कभी टूटी नहीं। वह अपने मूलाधारों को समेटे उछलटी, कूदती मध्य युग की पहुँच गई।

मध्युगीन हिन्दी साहित्य लोकतत्व से परिपूर्ण उसकी समस्त आधार भूमि लोकवार्ता रही है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार हिन्दी में मध्ययुगीन भक्ति का जन्म ही लोकक्षेत्र में हुआ था। जितने भी संत हुए सभी अशिक्षित और निम्नवर्ग में से हुए और उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी और पत्थर की पूजा, नाम का महत्व, निराकार के साकार और साकार के निराकार होने का अद्‌भुत व्यापार सभी कुछ तो लोकवार्ता से प्राप्त हुआ है।''

डॉ. सत्येन्द्र ने इस पर अधिक प्रकाश डालते हुए लिखा है कि हिन्दी के भक्ति काल का रस तत्व, दर्शन, आध्यात्म, काव्य के कथा प्रसंग, विषयगत, सामाजिक, व्यवहारिक, वर्णन–विवरण, छनद–शैली, भाषा का स्वरूप, सभी में लोकतत्व और उसकी महत्त प्रेरणा विदित होती हैं।''

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं कि रीति काल से पूर्व तक का हिन्दी साहित्य अर्थात् मध्य युग का साहित्य लोकक्षेत्र से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित था। उस काल से पूर्व की प्राप्त समस्त साहित्यिक निधि लोक में मौखिक रूप सुरक्षित सामग्री में से संकलित की गई थी।''

भारत ही नहीं अपितु संसार का समस्त साहित्य लोक विषयक पृष्ठ भूमि पर आधारित हैं। लोक में प्रचलित भाषा प्रारम्भ में लोक भाषा कहलाती हैं। उसमें रचित साहित्य लोकसाहित्य कहलाता है। फिर यही साहित्य साहित्य की पृष्टभूमि बन जाता है।

राम और कृष्ण भी लोक नायक थे उनकी समस्त कथा भी लोक वार्ताओं से सम्बद्ध है। भक्तितत्व मूलतः लोक तत्व है और वह जब सगुणत्व से सम्बद्ध हो जाता है तो लोक नायको का वरण कर लेता है।'' अलंकार विधान का समस्त रूप ही लोकवार्ता तत्व से सम्बन्धित है।'' बड़े–बड़े महाकाव्यों ने अपनी वस्तु का चयन लोकवार्ता और लोकसाहित्य से किया है। सूफियों की प्रेमगाथाओं में लोकभूमि व लोककथायें थीं। निर्गुणधारा की संज्ञा से अभिहित सम्पूर्ण साहित्य लोकगीत वर्ग का है।'' सिद्ध, नाथ संत, प्रेमगाथा, राम–कृष्ण विषयक धर्मगाथाओं की बहुत सी सामग्री श्रोतसाहित्य ही रहा। आजतक की समस्त साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक मात्र आंतरिक आधार वह पुराण वार्ता है जो वस्तृतः लोकवार्ता हैं भारत की समस्त अभिव्यक्ति के दो ध्रुव राम और कृष्ण इसी पुराण वार्ता से प्रस्तुत हैं। सच तो यह है कि भारत ही नहीं अपितु विश्व का कोई भी साहित्य ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें लोकतत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान न हो।

लोकसाहित्य समाज में सदैव विद्यमान रहा है और भविष्य में भी रहेगा। इसी साहित्य के माध्यम से प्राचीन विश्वास कायम रह पाते हैं। ऐसे साहित्य में ऐसी स्फूर्ति दिखाई देती हैं जो लिखित एवं रचित साहित्य में उस परिणाममें नहीं मिलती। किन्तु लोक साहित्य के संदर्भ में यह भाँति भी नहीं रहनी चाहिए कि मौखिक साहित्य ही लोक साहित्य है। व आदिम साहित्य ही लोकसाहित्य है तथा जिसका कोई रचियता शाश्वत साहित्य होता है इसके रूप भले ही बदलते रहें परन्तु लोक साहित्य के माध्यम से मानव जीवन अभिव्यक्त होता रहेगा। क्योंकि ऐसा साहित्य आडम्बरहीन, मर्यादाओं के बन्धनों से मुक्त लोक का साहित्य होता है।

कबीर के साहित्य का मूल अवधारणा कहीं लरेकतत्व से ही तो निस्तृत नहीं है, अगले पृष्ठों में इस तथ्य पर विचार किया जायेगा।

ब्रहमा

कबीर के काव्य में आध्यात्म्य के आधारः ब्रह्म, जीवत्र जगत् और मायाः के बारे में विशद् सामग्री उपलब्ध है। जिनका पृथक पृथक वर्णन प्रस्तुत है–

ब्रह्म के सम्बन्ध में ऋग्देव तथा अन्य वैदिक साहित्य में विस्तार से चर्चा हैं। आरम्भ में ब्रह्म शब्द का अर्थ, धन, वाक् और प्रार्थना था। किन्तु इन अर्थो का प्रचलन इसकी व्युत्पत्ति द्वारा बन्द हो गया। व्युत्पत्ति से ब्रह्म शब्द वृहः बढ़नाः धातु से बना है। जो बृहतम या महतम हो, जो सबसे बढ़ा चढ़ा हो, जिसमें बढ़ना क्रिया के सभी अर्थ शामिल हो उसे ब्रह्म कहा जाता है। शंकर, रामानुज आदि ब्रह्मवादियों ने अपने भाष्यों में ब्रह्म की यही उत्पत्ति की है।''

डॉ. हरियण्म् ब्रह्म पर प्रकाश डालते हुए विचार व्यक्त करते हैं कि ''ब्रह्म ही जगत् का निमिल और उपादान कारण हैं, यही वेदान्त के अनुयायियों का मुक्ष्य स्वर है। इस परम तत्व अथवा ब्रह्म के दो रूप हैं–निर्गुण और सगुण। निर्गुण ब्रह्म गुण, विशेषण, आकार और उपाधि से परे हैं, उसे किसी विशेषण चिन्ह या लक्षण से लक्षित नहीं किया जा सकता। सगुण ब्रह्म सविशेष, साकार और सोपाधि है,

संदर्भ

1. डॉ सुनीति, ए स्टडी ऑफ़ इंडियन इंग्लिश पोएट्री, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ साइंटिफिक रिसर्च पब्लिकेशंस, वॉल्यूम 2, अंक 10, पीपी 134–145, 2012।
2. योग संदेश पत्रिका, जुलाई 2007
3. कल्याण पत्रिका, अप्रैल 2012
4. कल्याण पत्रिका, मई 2010